WITWAVES
JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH
Vol-1 Issue-1
(October 2024)

भारतीय संस्कृति का सफल वाहक है हमारा लोक-साहित्य

डॉ. अनिल कुमार दुबे
सहा.प्राध्यापक - हिंदी विभाग

शोध सारांश

किसी संस्कृति विशेष के उत्थान-पतन विषयक उतार-चढ़ावों का जितना सफल अंकन लोक-साहित्य में रहता है, उतना अन्यत्र नहीं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि किसी भी संस्कृति की धूल उसकी आत्मा से जुड़ी होती है। अब अगर देश की बात की जाए तो भारतीय संस्कृति जितनी अधिक प्राचीन है, उतनी ही अधिक विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिलित स्वरूप की वाहक भी। समय-समय पर विभिन्न संस्कृतियों ने इस पर आघात पहुंचाने के प्रयत्न भी किए परंतु बजाय इसे नष्ट करने के वे स्वयं ही इसकी अंगभूत बन गई। अतः प्रश्न उठता है कि वे कौन से तत्व है जो इसे विशिष्ट बनाये हुए है। आखिर जीवन भी एक प्रकार का सरित-प्रवाह है।

बीज शब्द

लोक, संस्कृति, सरित, अस्तित्व, राष्ट्रीय, स्वतंत्रता, मूल्यांकन।

भूमिका

नागर के विपर्यय में लोकशब्द को समझा जा सकता है किंतु प्राचीन काल मे यह शब्द व्यापक जन समाज के लिए आता था । मात्र ग्रामीण जन जीवन के लिए नहीं। आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने समय में कहा था कि लोकोनाम जनपद वासी जन अर्थात जनपद में रहने वाला जन ही लोक है, परन्तु आज लोकशब्द को मात्र ग्रामीण जनजीवन तक सीमित कर दिया गया है। अभिनव गुप्त के मतानुसार- "लोकशब्द से यह संपूर्ण समाज (नगर और ग्राम्य) संबोधित होता है जो जीवन के अनगढ़पन को बड़े ही सहज ढंग से स्वीकार करता है और जीता है। इस अनगढ़पन में समाज का सामूहिक अनुभव और विवेक होता है जो अपनी स्वीकृति के लिए किसी शास्त्र के बजाय जीवन के कर्मरत अनुभव और परिस्थितिपरक राग अनुराग से उत्पन्न विवेक पर निर्भर करता है।"[1] लोक साहित्य को तीन रूपों में व्यक्त किया जाता हैं कथा, गीत और कहावतें आदि। लोककथाओं की विभेदता भी तीन रूपों में मानी जाती है - धर्मगाथा, लोकगाथा तथा लोक कहानी। धर्मगाथा पृथक अध्ययन का विषय है। शेष कथा के लोकगाथा तथा लोक कहानी दो प्रकार माने गए हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इन दोनों का पृथक-पृथक

अस्तित्व स्वीकार करते हुए लोक साहित्य को निम्न चार रूपों में बाँटा गया है - गीत, लोकगाथा, लोककथा तथा प्रकीर्ण साहित्य जिसमें अवशिष्ट समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश कर लिया गया है।

शोध विस्तार

सैकड़ों वर्षों की गुलामी के कारण भारतीय चेतना भावना शून्य एवं कुंठित हो गयी थी। ऐसे में अपनी संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से उसने अपना मुख मोड़ लिया था। अंग्रेजियत के प्रभाव में वह अपने ही इतिहास, साहित्य, कला, संस्कृति को विस्मृत करते जा रहे थे परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ज्यों-ज्यों स्वतंत्रता की चाह बलवती होती गई वह अपनी धरोहर को भी पहचानने लगा। साहित्य-कला-संस्कृति से बरबस ही प्रेम करने लगा। जिन हीरों को वह काँच का टुकड़ा समझते थे अब उनकी पहचान होने लगी थी। अपने प्राचीन साहित्य का अनुसंधान करते समय उसका ध्यान लोक साहित्य की ओर भी गया जिसके अन्तर्गत लोक वार्ता, लोक गाथा, लोक संस्कृति, लोक नाट्य, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक विधायें सम्मिलित हैं। पीढ़ियों से दादी-नानी की कंठों में सहेजी इस लोक संस्कृति की कला को उसने समझना-परखना शुरू किया। चूँकि उसकी संस्कृति की आत्मा लोक में ही बसती है। इसलिए वास्तव में देखा जाये तो आज लोक-साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन आवश्यक हो गया है क्योंकि इसके बिना हमारा सम्पूर्ण सांस्कृतिक अध्ययन अपूर्ण और निर्जीव सा है। भारत का नाम सिंधु नदी के नाम पर पड़ा जो कि आज पाकिस्तान से होकर बहती है और जैसा कि सर्वविदित है कि पाकिस्तान सन् 1947 में अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन के अंत के साथ हुए भारत-विभाजन के बाद अस्तित्व में आया। इस तरह, भारतीय राष्ट्रवाद एक दुर्लभ घटना है।

निर्मल वर्मा के अनुसार - "भारतीय संस्कृति की ये महान् काव्य रचनाएँ मनुष्य को उसकी समग्रता में, उसके उदात्त और पाशविक, गौरवपूर्ण और घृणास्पद, उजले और गँदले- उसके समस्त पक्षों को अपने प्रवाह में समेटकर बहती हैं। कला में सौंदर्य का आस्वादन और सत्य की बीहड़ खोज कोई अलग-अलग अनुभूतियाँ न होकर एक अखंडित और विराट अनुभव का साक्ष्य बन जाती है।"[2]

किसी भी देश की लोक संस्कृति उस देश की इतिहास की दर्पण होती है। भारत की लोक संस्कृति से भारत के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। भारत की सांस्कृतिक विरासत विस्तृत विशाल और समृद्ध है। इसे किसी भी प्रशासनिक सीमाओं में बाँध पाना संभव नहीं है। इसे क्षेत्रीय

आधार पर विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है। शिष्ट, सभ्यता और संस्कृति के लोगों ने लोक कला, साहित्य-संस्कृति को सदैव ही असभ्य अथवा अर्द्धसभ्य ही समझा। लेकिन युग परिवर्तन व सोचने की शक्ति की व्यापकता ने आज इस सोच को भी परिवर्तित किया है और हमारे देश में लोक साहित्य के अध्ययन और शोध कार्य में पिछले कुछ दशकों में तेजी आई है। इसके साथ ही लोक साहित्य के संग्रह, संरक्षण का कार्य जारी है।

'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। 'लोक' शब्द का मूल अर्थ है - देखने वाला। अतः लोक शब्द का प्रयोग पूरे जनसमुदाय के लिये होता है। जो इस कार्य को करता है लोक कहलाता है। ऋग्वेद में लोक के लिये 'जन' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में है। इसमें कोई दो राय नहीं कि लोक संस्कृति की झलक लोक-साहित्य में मिलती है, जो गंगा और यमुना की पवित्र एवं अविरल धाराओं की भांति ही अपने स्वाभाविक रूप में जन-वाणी द्वारा मुखरित होती आ रही है। क्योंकि इसमें सन्निहित हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक इत्यादि जीवन के चित्र वास्तविक संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हैं, जो सर्वथा अकृत्रिम है। डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथा कथित अशिक्षित और असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं जिनका आचार-विचार एवं जीवन परम्परा युक्त नियमों से नियंत्रित होता है तथा इन्हीं लोगों के साहित्य को लोक-साहित्य कहा जाता है।"[3] अनेक दृष्टियों से लोक-साहित्य वैयक्तिक और सामुदायिक जीवन के बहुत करीब होता है। बड़े से बड़ा लेखक जिन विषयों को केन्द्रित कर अपना लेखन करता है, वह अक्सर दैनिक जीवन के ऊपर के स्तर के होते हैं, परन्तु लोक साहित्य आजीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक की घटनाओं के चित्र खींचता है। जिन मुहावरों और लोकोक्तियों से वह साहित्य का सृजन करता है। वह बड़ी ही मर्मस्पर्शी और सजीव होती है। यदि किसी राष्ट्र से लेकर छोटे समुदाय तक के जीवन का आन्तरिक एवं बाह्य ज्ञान हासिल करना है तो उसके लोक-साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-"लोक-साहित्य में सहज मानव अनुभूतियों का साक्षात्कार होता है और ऐसे अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तत्व उनमें प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहते हैं जो तथाकथित इतिहास में स्थान नहीं पा सके हैं, लेकिन उनमें जन-चित्त को आन्दोलित और मथित करने की शक्ति विद्यमान रहती है।"[4]

लोक-साहित्य के अन्तर्गत अन्य विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन-मनन- चिन्तन किया जाता है जिसमें लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नाट्य, लोक सुभाषित, लोक कला, लोक

संगीत, लोक संस्कृति, लोकाचार इत्यादि विशेष महत्व रखते हैं। क्योंकि लोक साहित्य में निष्कपट हृदय की जो भावनाएँ मुखरित हैं, उनमें जो सजीवता और हृदय स्पर्शी मार्मिकता, सच्चाई, अनुभूति की गहराई एवं सामयिकता का यथार्थ है, शायद वह अभिजात वर्गीय कवियों तथा लेखकों की अलंकृत वाणी में देखने को नहीं मिलती है ? हर देश और हर जाति की भाषा का अपना एक लोक साहित्य होता है जो मौखिक होता है तथा जनमानस की सहज अभिव्यक्ति होता है। लोक साहित्य जन वाणी है लोक वाणी है। यह किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है वरन् समूह की वाणी है। भारतीय राष्ट्रवाद, एक विचार आधारित राष्ट्रवाद है जो कि एक सनातन भूमि का विचार है। जिसकी उत्पति एक प्राचीन सभ्यता से हुई, जिसे एक समान इतिहास ने एकता में पिरोया और एक बहुलवादी लोकतंत्र ने निरंतरता प्रदान की। भारत के भूगोल ने इसे संभव बनाया और इतिहास ने इसकी पुष्टि की। दुनिया भर में भारत के सम्मान का एक बड़ा कारण यही है कि वह सभी प्रकार के दबावों और तनावों के बावजूद कायम रहा है।

हिंदी के प्रसिद्व विचारक - निंबधकार विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि- "मैं हिंदू धर्म को लोकशास्त्र कहता हूं तो मेरा अभिप्राय इतना ही है कि वह विचारक, भावक और भावित सबको मिलाकर है। लोक साहित्य की भावधारा श्रुति परंपरा के सहारे अगणित मोड़ लेती हुई आज भी अपने प्राचीन रूप में प्रवाहित है।"[5] लोक साहित्य का लिखित दस्तावेज पहले नहीं उपलब्ध था, ग्रामीण जनता की यह निधि अत्यंत ही भावपूर्ण है और यह प्रकीर्ण साहित्य अत्याधिक विस्तृत है। उसमें कृत्रिमता का अभाव है, अनुभूतियों का सहज स्पंदन है। लोकगीतों की मानसी गंगा की समता बंधनयुक्त शास्त्रीय राग-रागनियां नहीं कर सकती हैं।

जनता का काव्य एवं जनता की परंपराएं लोकवार्ता शब्द द्वारा अभिहित होती है। हिंदी में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल ने किया। उल्लेखनीय है कि वे भारतीयता के अन्वेषी थे। इसे उन्होंने लोक में खोजा और वेद में भी। 'लोके वेदे च आधार' सूत्र ने उनकी मदद की। इस तरह से कहा जा सकता है कि वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारत और भारतीयता को समझने की दृष्टि दी। लोक साहित्य मानव जाति की वह धरोहर है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती हुई निरंतर परिवर्तमान होती हुई अक्षुण्ण बनी रहती है। लोक-साहित्य का रूपाकार अवश्य किसी देश या जाति की भौगोलिक सीमा में आबद्व रहता है। पर उसकी आत्मा सार्वभौम और शास्वत है, उसकी स्थिति व परिस्थिति, आशा-निराशा, कुंठा और विवशताएं एक सी है।

लोक साहित्य, भाषा पर कार्य करने वाले विदेशी विद्वानों में कर्नल टाड, डाल्टन, मिस फ्रेयर, डैमण्ड, आर. सी. टेम्पल, मिस्टर डब्लू क्रुक, कैम्बेल, नीलोज, टॉनी, पेंजर का नाम महत्वपूर्ण है इनके अतिरिक्त श्री विनय कुमार सरकार शरत् चन्द्र राय, ग्रिर्यसन, रामास्वामी राजू, श्री आर सुब्रहमन्यम इत्यादि शोधकों और विद्वानों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। देखा जाये तो भारत में लोक साहित्य के सन्दर्भ में जो चेतना जागृत हुयी है वह अंग्रेजी विद्वानों द्वारा किये गये कार्यों व उनकी कृतियों को देख पढ़ कर ही है। "लीजेन्ड ऑफ पंजाब के लेखक श्री आर. सी. टेम्पल महोदय ने कहा है कि-"सन् 1884 ई. तक विदेशों में इस सम्बन्ध - में जितना काम हुआ था, उतने काम का एक अंश भी हमारे देश में तब तक नहीं हो पाया था।"[6] लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में मैं विशेष रूप से भोजपुरी साहित्य, कला, संस्कृति की बात को आगे बढ़ाना चाहूँगा। भोजपुरी लोक-साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है कि यह साधारण लोगों के सुख-दुख, आँसू और हँसी को चित्रित करने में सक्षम है। वास्तव में देखा जाये तो ये बार-बार घटित होने वाले विषय आम व्यक्ति के सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक जीवन को अंकित करते हैं। यह एक अत्यन्त प्राचीन तथा अविच्छिन्न परम्परा है। भारतीय लोकवार्ता से सम्बन्धित कार्य करने वाले विद्वानों में सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है, जार्ज ग्रियर्सन का जो प्रसिद्ध भाषाविद थे। सन् 1886 ई. में ग्रियर्सन का ग्रन्थ "सम भोजपुरी फोक सोंग्स' प्रकाशित हुआ जिसमें बिहार के भोजपुरी जनपद के बिरहा, जतसार तथा सोहर नामक गीतों का संकलन किया गया था। इसके पश्चात् अनेक लेख लिखे गये। एच. दामंत, विलियम क्रुक आर. एम. कांकरनैस, डब्ल्यू. टी. डेल्स इत्यादि अंग्रेजी विद्वानों ने भोजपुरी लोक साहित्य, लोकगीतों पर किया।

भारतीय विद्वानों द्वारा भी लोक साहित्य पर कार्य आरम्भ हुआ। हिन्दी में लोक साहित्य पर पुस्तक लिखने का कार्य सर्वप्रथम मन्नन द्विवेदी ने किया। लाला संतराम, पं.रामनरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री नरोत्तम स्वामी ठाकुर राम सिंह, श्री दुर्गाप्रसाद सिंह, श्रीमती रामकिशोरी श्रीवास्तव श्याम चरण, श्री मारकण्डेय, श्री कृष्णदेव उपाध्याय श्री कृष्णदास, डॉ. उदय नारायण तिवारी, सत्यव्रत अवस्थी इत्यादि लोक संस्कृति, लोकगीतों के प्रेमियों ने जो सत्प्रयास किये वो अवर्णनीय हैं। इनके अतिरिक्त साहित्यिक संस्थाओं ने भी इसे आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडमी तथा भोजपुरी', लोक वार्ता, लोकवाणी तथा लोक साहित्य इत्यादि संस्थाओं व पत्रिकाओं ने जो कार्य इस दिशा में किया वह सराहनीय है भोजपुरी लोक साहित्य के अवलोकन करने में हमें आश्चर्य होता है कि कैसे शताब्दियों के हस्तक्षेप के बावजूद कुछ परम्पराएँ वर्तमान में भी अपने मौलिक रूप में आज भी जीवंत हैं। मॉरीशस, त्रिनिनाद, टुवैगो

तथा विश्व के अन्य देशों में भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और बिहार में प्रचलित परम्पराओं से उनकी अदभुत समानता परिलक्षित होती है।

विशेष रूप से लोक साहित्य के क्षेत्र में व्यवस्थित कार्य करने का श्रेय पं. रामनरेश त्रिपाठी को जाता है। जिनका लोक गीत संग्रह 'ग्राम गीत' सन् 1929 ई. में प्रकाशित हुआ । देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक साहित्य सम्बन्धी लगभग एक दर्जन से अधिक पुस्तकों की रचना की जिसमें कुछ पुस्तकें लोकप्रिय हैं - बेला फूले आधी रात, धरती गाती है, बाजत आवे ढोल, धीरे बहो गंगा इत्यादि। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय की भोजपुरी लोक गीत तथा भोजपुरी लोक संस्कृति इत्यादि संग्रह के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं।

डॉ.वासुदेवशरण मानते है कि-"लोक साहित्य लोक जीवन का विधायक होने के कारण निजी मह त्व रखता है, संस्कृति के उत्थान-पतन का जैसा वास्तविक चित्र लोक साहित्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।"[7] लोक साहित्य वस्तुतः संस्कृति के स्वरूप की स्थापना करने वाला अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। उदाहरण के लिए, कागज के नोट के प्रति लोक मानस की क्षोभ मिश्रित वेदना की यह अभिव्यक्ति समस्त परिवेश को सजीव रूप में प्रस्तुत करती हुई दिखाई देती है- यथा-“भाभी चल्यौ छेद को पईसा, जाय तू नार में लटकाय लीजो। तथा तू काहे को बनवाबेगी हमेल, रूपैया है गयो कागज को?”[8] यह अनायास नहीं है कि वे जनपदीय-साहित्य और लोक-साहित्य को पर्यायवाची मानते हैं। प्रसिद्व हिंदी कथाकार निर्मल वर्मा “कला का जोखिम” निंबध में कहते हैं कि-"किसी भी सार्थक संवाद के लिए हमें अनिवार्यतः, तीन सीढ़ियां पार करनी पड़ती है- दुनिया को पहचानना, उस पहचान से अपने को जानना, उस जानने को दूसरे में परखना। इन तीनों सोपानों में मनुष्य का कर्म बराबर मौजूद रहता है।"[9]

उल्लेखनीय है कि इस लोक में मनुष्यों का समूह ही नहीं, सृष्टि के चर-अचर सभी सम्मिलित हैं; पशु-पक्षी, वृक्ष-नदी, पर्वत सब लोक हैं। जबकि पश्चिम में हिन्दू धर्म को प्रस्थापित करने वाले स्वामी विवेकानंद ने इसी बात को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि-"जीवों में मनुष्य ही सर्वोच्च जीव है और यह लोक ही सर्वोच्च लोक है। हमारा ईश्वर भी मानव है और मानव भी ईश्वर है। हमारे लिए इस जगत को छोड़ और किसी जगत को जानने की संभावना नहीं है और मनुष्य ही इस जगत की सर्वोच्च सीमा है।"[10] शायद यही कारण है कि स्वामी विवेकानंद न केवल क्रांतिकारियों को प्रभावित किया है बल्कि उत्तरोत्तर काल के राष्ट्रवादियों और स्वतंत्रता सेनानियों को भी। रोमां-रोलां बताते है कि बेलूर मठ की वाटिका में दिए एक व्याख्यान में

महात्मा गांधी ने स्वीकार किया कि विवेकानंद के अध्ययन और उनकी पुस्तकों ने उनकी देशभक्ति को बढ़ाया। इस प्रकार, भारत की आजादी के लिए गांधीजी के आंदोलन में विलीन होने वाले सभी क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलन स्वामीजी की सिंह गर्जना उठो, जागो के बाद ही शुरू हुए।

लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है। लोक का जितना जीवन है, उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा जन की संस्कृति इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है। लोकवार्ता का संबंध भी इन्हीं के साथ है। लोक वार्ता का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग लोक साहित्य है। लोकगीत, लोक कथाएं, लोक गाथाएं, कथागीत, धर्म गाथाएं, लोक नाट्य, नौटंकी, रामलीला आदि लोक साहित्य के विषय है। लोक साहित्य, लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। लोक साहित्य बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता-सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह से घुल-मिलकर ही कहता है। लोक भाषा के माध्यम से लोक चिंता का अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। महाभारत और रामायण इसके प्रबल प्रमाण है। राम और श्रीकृष्ण विषयक लोक गाथाएं लोक जीवन में प्रचलित थीं।

निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते है कि लोकगीतों और लोकनृत्यों में लोक संस्कार मुख्य होते हैं। लोकगीत और लोकनृत्य संस्कारवत् लोक जीवन से लिपटे होते हैं। लोक गीतों के संदर्भ में वेरियर एल्विन का कथन है कि इनका महत्व इसलिए नहीं है कि इनके संगीत, स्वरूप और विषय में जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इनमें मानव शास्त्र के अध्ययन हेतु प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री हमें उपलब्ध होती है। लोक साहित्य के अध्ययन से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में फिरने-डोलने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। लोक संस्कृति ऐसे संस्कारों को हमेशा सहेज कर रखती है। समन्वयात्मकता लोक संस्कृति की मुख्य विशेषता यही गुण लोक जीवन का जीता रखता है। ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार डॉ. विजय/भोजपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति/प्रकाशन मंदिर, वाराणसी/ संस्करण - 2004-05
2. उपाध्याय, डॉ० कृष्णदेव/लोक साहित्य/विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी/संस्करण 2002
3. राय जयप्रकाश व सिंह डॉ. योगेन्द्र प्रताप/ उत्तर मध्य क्षेत्र की संस्कृति/ प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, भारत सरकार/ दूसरा संस्करण 1999
4. वर्मा डॉ. धीरेन्द्र - प्रधान सम्पादक/ हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1)/ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग/ संस्करण 2006
5. पाण्डेय डॉ. लक्ष्मी कान्त/ भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा का विकास/ ग्रन्थम कानपुर/ संस्करण 2012
6. उपाध्याय डॉ. कृष्णदेव/ लोक साहित्य की भूमिका/ साहित्य भवन, इलाहाबाद/ संस्करण 2002
7. उपाध्याय डॉ. कृष्णदेव/ भोजपुरी और उसका साहित्य/ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/ संस्करण 2011
8. उपाध्याय डॉ. कृष्णदेव/ भोजपुरी ग्रामगीत भाग-1, 1994/ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
9. उपाध्याय डॉ. कृष्णदेव/ भोजपुरी ग्रामगीत भाग-2, 1994/ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
10. उपरोक्त